करना चाहिए। यह अवश्य है कि इसके लिए कोई बाह्य प्रयास नहीं करना पड़ता; कृष्णभावना और भक्तियोग में मग्नता से इनका विकास अपने-आप हो जाता है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।२०।।

ये=जो; **तु**=किन्तु; **धर्म्य**=अविनाशी धर्ममय; **अमृतम्**=ज्ञानामृत को; **इदम्**=इस; **यथा**=जैसा; **उक्तम्**=कहा गया; **पर्युपासते**=पूर्णरूप से तत्पर रहते हैं; **श्रद्दधानाः**=श्रद्धासहित; **मत्परमाः**=सर्वभाव से मुझ भगवान् के परायण; **भक्ताः**=भक्त; **ते**=वे; **अतीव**=हार्दिक; **मे**=मुझे; **प्रियाः**=प्रिय हैं।

अनुवाद

जो मेरे परायण हुए, अर्थात् मुझे परम गति समझ कर विशुद्ध प्रेम से मेरी ही प्राप्ति के लिए ऊपर कहे हुए भक्तियोग के अमृतपथ का सेवन करते हैं, वे भक्त मेरे अतीव प्रिय हैं।।२०।।

तात्पर्य

इस अध्याय में जीव के सनातनधर्म—भक्तियोग की पद्धति का वर्णन है, जिसके द्वारा भगवत्प्राप्ति होती है। श्रीभगवान् को यह पथ अति प्रिय है; अतः इसके अनुगामी को भी वे अपना प्रिय मानते हैं। अध्याय के आरम्भ में अर्जुन ने जिज्ञासा की थी कि निर्विशेष ब्रह्मनिष्ठ और भगवत्सेवापरायण भक्त में कौन श्रेष्ठ है। श्रीभगवान् ने इसका इतना स्पष्ट उत्तर दिया कि इसमें कोई सन्देह नहीं रहा है कि भक्तियोग स्वरूप-साक्षात्कार का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। प्रकारान्तर से, इस अध्याय में निर्णय है कि जीव में सत्संग से शुद्ध भक्तियोग की उत्कण्ठा का उदय होता है। फिर सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करने पर श्रवण-कीर्तन होने लगता है और श्रद्धा, रुचि और भक्ति-भाव के साथ वैधीभक्ति का आचरण करता हुआ शनैः-शनैः वह पूर्णतया भगवत्सेवा-परायण हो जाता है। इसी पथ का बारहवें अध्याय में उपदेश है। अस्तु, इसमें सन्देह नहीं कि भक्तियोग स्वरूप-साक्षात्कार और भगवत्प्राप्ति का ऐकान्तिक परम-पथ है। जैसा इस अध्याय में कहा है, परम सत्य का निराकार स्वरूप तभी तक उपयोगी हो सकता है, जब तक मनुष्य स्वरूप-साक्षात्कार के पथ में समर्पित नहीं हो जाता। भाव यह है कि जब तक शुद्धभक्त का सत्संग प्राप्त नहीं होता, तब तक ही निराकार धारणा लाभकारी हो सकती है। निराकारवादी निष्काम कर्म करता हुआ आत्मा और प्रकृति में भेद को जानने के लिए ध्यान और ज्ञान में प्रवृत्त रहता है। यह तभी तक आवश्यक है जब तक शुद्धभक्त का सत्संग न मिले। जिस सौभाग्यशाली में सीधे-सीधे शुद्ध भक्तिभावमय कृष्णभावना के परायण हो जाने की उत्कण्ठा जागृत हो गयी हो, उसके लिए स्वरूप-साक्षात्कार का क्रमिक पथ निष्प्रयोजन हो जाता है। भगवद्गीता के मध्य के छः अध्यायों के अनुसार भगवद्भक्ति सर्वश्रेष्ठ सुखमयी है। भक्त को प्राणधारण के लिए आवश्यक पदार्थों की चिन्ता नहीं करनी पड़ती, वात्सल्यमयी भगवत्कृपा उसके सम्पूर्ण योगक्षेम का स्वयं वहन करती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः।।१२।।

इति भक्तिवेदान्तभाष्ये [illegible]